अभिज्ञानशाकुन्तलम नाटक में मानवाधिकार

डॉ0 भक्तवत्सल

अध्यापक सह प्रधानाचार्य आर0आर0बी0+2 उच्च माध्यमिक विद्यालय, कथैयाँ, मोतीपुर, मुजफ्फरपुर, बिहार

आज 21 वीं शताब्दी में 'मानवाधिकार की चार्चा किए बिना कोई व्यक्ति या समाज या संस्था आदर्श एवं नैतिकता से विरहित जानी जाती है। सम्प्रति साहित्यिक रचना, दूरदर्शन, दैनिक पत्र–पत्रिकादि, विज्ञापन या गैरसरकारी संगठन सभी मानवाधिकार की रट से सभ्य एवं सर्वजनीन होने की पुष्टि चाहते हैं जो स्वाभाविक भी है। खासकर सदियों से गुलाम रही भारतवर्ष की अनपढ़ जनता के लिए एवं स्वतंत्र भारतवर्षीय निरंकुश शक्तिमान् पुलिस प्रशासन की उन्मुक्तता साथ ही अभिजात्यता से संवलित अकड़युक्त उच्च घराने के तथाकथित अत्याचार रोकने की दिशा में पहल करना मानवाधिकार है।

वस्तुतः मानवाधिकार ऐसे मानवीय अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को प्राणी होने के नाते प्राप्त है। भले ही उसकी राष्ट्रीयता, व्यवसाय, वर्ग और सामाजिक आर्थिक स्थिति कुछ भी हो। भारत में मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 को भारतीय संसद् ने पारित किया है। इस अधिनियम की धारा 2 (घ) में मानव अधिकार शब्द की परिभाषा इस प्रकार दी गई है– ''मानव अधिकारों का तात्पर्य संविधान द्वारा प्रत्याभूत अथवा अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में सन्निहित व्यक्तियों के प्राण, स्वतन्त्रता, समानता एवं गरिमा से सम्बन्धित ऐसे अधिकारों से है जो भारत के न्यायालयों द्वारा प्रवर्त्तनीय है।''[1]

इस प्रकार मानवाधिकार की आधुनिकी अवधारणा सभी समाजों के नीतिशास्त्रों में भी किसी–न–किसी रूप में विद्यमान दिखती है जो संस्कृत धर्मशास्त्र, वाइविल, कुरान, अरस्तु के 'न्याय के सिद्धान्त' कैथोलिकों के 'प्राकृतिक कानून' इत्यादि में तरतमबुद्धया उद्घाटित हैं। दरअसल प्राचीन काल में मानवीय कृत्य–अपकृत्यों का अनुशासन करना राजा का कर्त्तव्य था, परन्तु बाद में समाजिक नियमों से सम्बन्धित संहिताओं को लागू करने का दयित्व राजा ने अपने विश्वासपात्र नीतिज्ञों को सौंप दिया। कालान्तर में, इन नियमों ने कानून का रूप धारण कर लिया जबकि इनके उल्लंघन में दण्ड की व्यवस्था सुनिश्चित की जाने लगी। सभ्यता के विकास के साथ ही साथ मनुष्य के जीवन में परिर्वतन और प्रगति दृष्टिगोचर होने लगी; किन्तु हिंसा, बलपूर्वक दूसरो की जान और सम्पत्ति छीन लेने की इच्छा और मानवीय अधिकारों के अतिक्रमण में कभी कमी नहीं आई। ग्राम, नगर, प्रदेश, देश और विदेशों में प्रतिदिन

मानव के मूलभूत प्राकृतिक तथा नैसर्गिक अधिकारों के उल्लंधनों एवं अतिक्रमणों की घटनाओं में वृद्धि होने लगीं। फलतः सभी सभ्य समाजों के द्वारा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बहुत से मानवाधिकार को परिभाषित कर कानून एवं दण्डविधान से युक्त किया गया। मानवाधिकार को मोटे तौर पर पाँच वर्गों में लिया गया[2] जो क्रमशः व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, समानता, अभिव्यक्ति व भाषण की स्वतन्त्रता, काम का अधिकार तथा पर्याप्त मजदूरी प्राप्ति एवं पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाएँ हैं। इनके अतिरिक्त भी कुछ नये मानवाधिकार प्रकट हुए। यथा– महिलाओं का अधिकार, विकास का अधिकार, पर्यावरण सुरक्षा का अधिकार, क्षतिपूर्ति का अधिकार, सूचना, सुरक्षा, बालश्रम इत्यादि।

इन्हीं उक्त मानवाधिकारों को मैंने विश्वविश्रुत महान् कालजयी रचना, कालिदास का सर्वस्वरूप अभिज्ञानशाकुन्तल में देखने का प्रयास किया है। स्थालीपुलाकन्याय के रूप में इस रचना को देखने का यह भी एक सशक्त उद्देश्य (कारण) है कि जो सार्वकालिक रचना होती है उसमें भूत, वर्तमान और भविष्य, की दृष्टि समाविष्ट रहती है। किसी भी मानवीय आवश्यक तत्त्व से वह पृथक् नहीं रहने पाती। भले ही विषय का संकुचन एवं पल्लव कविविवक्षाधीन हो। अस्तु।

अभिज्ञानशाकुन्तल एक दृश्यकाव्य (नाटक) है। उस समय 1500 वर्ष पूर्व राजतंत्रात्मक परिस्थिति में, मनु–याज्ञवल्क्य के नियम–विधानों के अनुशासन में, मठमन्दिर, प्रेक्षागृह, गोष्ठी प्रभृति संचारस्थल या माध्यमों के साये में तत्कालीन राजतंत्र में राष्ट्र से इतर, सम्प्रदाय से भिन्न जनकल्याणकारी चिन्तन नहीं था। तभी सनातनियों पंडितों, बौद्धाचारदिग्दर्शकों एवं श्रवणकों में सामाजिक एवं लौकिक नीति एवं मर्यादित विषयों के ही प्रति आग्रह देखा जाता था। अनैतिक धर्मविरूद्ध विषयों एवं आचरणों की सर्वत्र सदैव भर्त्सना होती थी। ऐसी परिस्थिति में मानवीय अधिकार एवं कर्तव्यों से ही सारा शास्त्र आपूरित दीखता है।

मनु द्वारा निर्दिष्ट स्मृति –

सुवासिनी कुमारीश्च रोगिणी गर्भिणी स्त्रियः।
अतिथिभ्योऽग्र एवैतान्भोजयेद् विचारयन्।। 3.714
सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।। 4.138
भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत्।
शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह।।

हीनांगनतिरिक्तांग निवंद्या हीनान्वयोऽधिकान।

रूपद्रव्यविहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत्।। 4.141

भार्या पुत्रश्च दासश्च प्रेष्यो भ्राता च सोदरः।

प्राप्तापराधास्ताड्याः स्यूरज्वा वेणुदलेन वा।। 8.299

पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमांगे कथञ्चन

अतोऽन्यथा तु प्रहरन्प्राप्तः स्याच्चौरकिल्विषम्।। 8.30

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मानि।

समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति।। 12.91

मानवेतर जीव वृक्ष, छोटे–छोटे जीव लता आदि के नष्ट करने पर प्रायश्चित का विधान करता है। बहु, कुमारी, रोगी, गर्भिणी आदि की प्राथमिकता अप्रिय, सत्य का निषेध,
शुष्कवैरत्याग विकलांगों रूपद्रव्यविहीनों पर अनाक्षेप, चोर के भी उत्तमांग पर प्रहार की मनाही, इत्यादि सभी सर्वांग–रूप से मानवाधिकार के ही पोषक तत्त्व हैं। आचार्य मनु ने विधान कर रखा है कि गृहस्थ को चाहिये कि जो अपने हाथ से पका नहीं सकते ऐसे ब्रह्मचारी, सन्यासी आदि के लिए अन्न दान करना चाहिये। इस प्रकार असहाय प्राणियों, विकलांग मनुष्य तथा कुत्ता, पक्षी आदि के लिए भी भोजन का भाग देना चाहिये।[3] बिना प्रशिक्षण दिए हुए भूख और रोग से पीड़ित घोड़े, बैल की सवारी न की जाय। साथ ही शीघ्रगामी विनीत पशुओं की सवारी बिना चाबुक की मार से करना चाहिये। ईर्ष्या एवं द्वेष तो ताडन सर्वथा निन्दनीय माना गया है।[4] मानव की समस्त जीवों के प्रति प्रेम, सौहार्द्र, सहिष्णुता, परोपकार, इत्यादि ही मानवाधिकार के विषयीभूत तत्त्व बन कर उभड़े हैं। एतदर्थ संस्कृत भाषा में निबद्ध ''अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में अनुस्यूत विचारों के मध्य मानवीय अधिकार (मानवाधिकार) को स्थालीपुलकन्यास से उपस्थापित किया जा रहा है।

नये मानवाधिकार में ''पर्यावरण सुरक्षा का अधिकार'' शामिल किया गया है। पर्यावरण के अन्तर्गत जीव–जन्तु–पक्षी पादप आदि सबों का समावेश है। आज की 'वन्य जीव संरक्षा' की बानगी 'आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः' इस वैखानस की उक्ति में है। जहाँ यह स्पष्ट किया किया है कि शास्त्रधारियों का कर्तव्य तो पीड़ित जानों की रक्षा करना है, निरपराध पर प्रहार करना नहीं[5]।

पशु–पक्षी से सोदरस्नेह प्राप्त करती शकुन्तला की उक्ति– ''न केवलं ताततनियोग एव, अस्ति में सोदरस्नेह एतेषु'' वन्यजीव के प्रति आत्मीयता प्रदर्शित करती है। कुलपति कण्व भी आश्रमीय पौधों पर

स्नेहातिशय रखते हैं।[6] अपने सैनिकों के व्यवहार के फलस्वरूप हाथी का भयभीत हो धर्मारण्य को क्षति पहुँचाते देख राजा की पश्चात्ताप पूर्ण स्वीकारोक्ति ''हमलोग भी ऐसा ही प्रयत्न करेंगे जिससे आश्रम को पीड़ा न पहुँचे मानवाधिकार का पोषक है।[7] यहाँ तक कि अपनी माता हरिणी से मिलने को आतुर मृगशावक को प्रियम्वदा एवं अनसूया माता से मिलाती है। वन्यजीव के प्रति स्नेह से आधिक्य सखीद्वय पशुओं की अधिक प्राप्ति में सहयोग करती दीखती हैं। मूल पंक्ति निम्नलिखित हैं– ''यथैष इतो दत्तदृष्टिरूत्सुको मृगपोताको मारतमन्विष्यति। एहिः संयोजयाव एनम्[8]।'' मृगशावक के मुख जब कुशों के अग्रभाग से छिद जाया करते थे अर्थात् उसमें धाव हो जाया करते थे तो उस घाव को सुखाने के लिए शकुन्तला उस पर हिंगोट का तेल लगा दिया करती थी, इलाज किया करती थी। प्यास लगने पर स्वयं जल पिलाती। इस प्रकार के उक्त सारे क्रियाकलाप वन्यजीव संरक्षण सम्बन्धी विचार को ही पुष्ट करते दिखते हैं। मानवीय कर्तव्य एवं पशुओं का अधिकार है कि वह घरेलु होने के नाते उचित स्वास्थ्य सुविधा पा सके।

नये मानवाधिकारों में ''महिला अधिकार'' की प्रमुखतया चर्चा की जा रही है। किन्तु अभिज्ञानशाकुन्तमल के स्त्रीपात्र अपने अधिकारों के प्रति सचेष्ट प्रतीत होती है। शकुन्तला जब अपने पतिगृह पहँचती है तब यहाँ दष्यन्त उसे नहीं पहचान पाता। दुष्यन्त शकुन्तला की भर्त्सना करता है। ऐसी दुःस्थिति में शुकन्तला क्रोधित हो दुष्यन्त को अनार्य, अभद्र एवं वञ्चक आदि शब्दों से सम्बोधित कर डालती है।[9] उसके 'अनार्य' इस सम्बोधन द्वारा प्रागल्भभाव प्रदर्शन रूप उसके मुग्धत्व के व्याघात की तथा चारित्रिक आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वह तो पतिव्रता है। यहाँ इस अवसर पर ही दोषारोपण किया गया है। अतः उसके निराकरण के लिए और अपने सतीत्व की स्थापना के लिए उसका यह आचरण उचित ही है। इस प्रकार मुग्धा, विनयशीलता आदि से ऊपर उठकर स्त्रियाँ अपने अधिकार के लिए स्वयं संघर्ष करती दिखती है। जिसे महिला अधिकार या पुनः 'राय प्रकट करने का अधिकार' के रूप में समझा जा सकता है।

इस नाटक के द्वितीय अंक के प्रारम्भ में विदूषक भूख से पीड़ित एवं शिकार हेतु इस्तस्ततः व्याकुलतापूर्ण परिभ्रमण से आक्रान्त हो स्वयं के अस्तित्व एवं राजा की महिमाशीलता को कोसता है कुव्यवस्था में आपतित व्यक्ति की मनोदशा प्रकट होती है साथ ही ''पीड़ित को अपना मत रखने का अधिकार'' प्रकट होता है। राजा दुष्यन्त मित्र विदूषक की शारीरिक दुःस्थिति की परवाह किए बिना परिभ्रमणशील है। इस स्थिति में विदूषक अनभीप्सित कसैले, सड़े हुए दुर्गन्धियुक्त, विरसस्वादयुक्त कड़वे,

पर्वतीय नदियों का पानी, बिना किसी निर्दिष्ट समय पर अनिच्छिर शूल्य मांस, घोड़े के पीछे दौड़ते रहने पर हड्डी में दर्द, जोड़ की पीड़ा, शारीरिक शिथिलता फलतः अनिद्रा का भोगी बन जाता है। वह तकलीफ करता है।[10] इस प्रकार उस समय में भी ''शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के अधिकार'' से सम्बन्धित विषयों का अनुभव किया जा सकता है।

नाटक के षष्ठ अंक का प्रारम्भ सिपाही एवं मछुआरे के व्यवहार से प्रारम्भ होता है। इस प्रसंग के अनेकविध अहमितता मुखरित दीखती हैं। नगर रक्षाधिकारी राजश्यालक और उसके पीछे–पीछे दो अन्य रक्षक (सिपाही) एक पुरूष को बाँधे हुए प्रवेश करता है। इन में एक सिपाही पुरूष अर्थात् मछुआरे को पीटता एवं गाली देता हुआ चोर शब्द से भर्त्सना करता है। यहाँ अपराध प्रमाणित होने के बिना भी 'चोर' कहा जाता है। साथ ही सिपाही का यह कहना कि इसका वध करने के लिए मेरी बॉहें फड़क रही हैं एवं इसे गिधों के भोजन बना देंगे– निश्चित रूप से मानवाधिकार की स्थिति उत्पन्न करता है। सम्प्रति पुलिस आयेग– द्वारा पुलिस सर्वे व शोध अध्ययनों के जरिये प्रकट किया गया है कि अपरध संस्वीकृति कराने के लिए पुलिस द्वारा आमतौर पर अपनाये जानेवाले तरीकों[11] में हिरासत में थर्डडिग्री का इस्तेमाल गन्दी भाषा एवं असभ्य व्यवहार, हिरासत में अपमानित करना एवं पैसा लेने के अवैध तरीके का इस्तेमाल किया जाता है। मानवाधिकार का यह मामला भारतवर्ष के स्वर्ण युग में भी इस नाटक द्वारा ज्ञात होता है। पुलिस का अत्याचार तो यहाँ दृष्ट ही है। घटना के उपसंहार में राजा मुछुआरे को परितोषिक प्रदान करता है। मछुआरे ने यह पारितोषिक का आधा पुलिस को पान–फूल के लिए विनयपूर्वक प्रदान कर दिया– ''इतोऽर्ध' युष्माकं सुमनोमूल्यं भवतु'' इस पर जामुन की उक्ति होती है कि इतना लेना तो साहब का अधिकार एवं पद ही है। आनन्द तो तब जाएगा जब हमलोग मदिरालय में एक साथ मिलकर मदिरा पान करेंगे– कादम्बरी सखित्वमस्माकं प्रथमोऽभिमतमिष्यते। तच्छौण्डिकापणमेव गच्छामः। इस प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तल के षष्ठ अंक में पुलिस का आधुनिक रूप दीखता है जो मानवाधिकार हनन में कुत्सित आज भी सहायक बना हुआ है।

शकुन्तला द्वारा प्रत्याख्यान किए जाने के बाद उचित कारण के प्रकट होने पर जब दुष्यन्त को शकुन्तला सम्बन्धी दाम्पत्य का ज्ञान होता है तब से राजा पश्चात्ताप निमग्न हो जाता है। महनीय उदासीनता का कारण वसन्तोत्सव रोक दिया जाता है। इस पर प्रजा जनों की उत्सुक जिज्ञासा है कि महाराज ने ऐसा क्यों कर दिया? चूँकि मनुष्यों को तो उत्सव मनाने का बड़ा चाव होता है, इसलिए इसकी रूकावट में तो अवश्य बड़ा कारण होना चाहिये। मूल कथन इस प्रकार है– आर्य! कौतूहलं नौ।

यद्यनेन जनेन–श्रोतव्यं कथयत्वयं किं निमित्तं भर्त्ता वसन्तोत्सवः प्रसिद्धिः ।पृ0363।। इस आधार पर तो यह भी प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज ''उत्सव मनाने के अधिकार'' को मौलिक कोटि में गिनता था। पुनः यदि उचित राजकीय आपत्ति है तो रोकना उचित माना जाएगा।

शाकुन्तल के छठे अंक में समुद्र द्वारा व्यापार करनेवाला निःसंतान धनामित्र की मृत्यु हो जाने पर उनकी पत्नी के पति की सम्पत्ति पाने का अधिकार प्राप्त नहीं होने पर राजा उनकी पत्नियों का अधिकार न समझ कर उनमें से किसी के गर्भवती होने का पता लगाता है। इस तरह राजा गर्भस्थ बालक को ही सम्पत्ति का अधिकारी बना देता है जो ''संपत्ति का अधिकार'' जैसे मानवाधिकार को द्योतित करता है। मनु के निम्नलिखित वचन के अनुसार गर्भस्थ संतान को भी पिता की सम्पत्ति पाने का अधिकार था–

ये जाता येऽप्यजाता वा ये च गर्भो व्यवस्थिताः।

वृत्तिं तेऽपि हि कांक्षन्ति वृत्तिलोपो विगर्हितः।।

राजश्याल एवं पुरूष (मछुआरे) की बातचीत के मध्य ''व्यवसाय चुनने का अधिकार या ''कार्य करने का अधिकार'' की भी ध्वनि सुनाई पड़ती है। जब राजश्यालक ने मछुआरे की आजीविका पर टिप्पणी की – ''विशुद्ध इदानीमाजीवः'' जिसका विपरीतलक्षण के द्वारा ''अत्यन्त जघन्य जीविका'' अर्थ प्रकट होता है। इस पर मछुआरे की आपत्ति होती है कि मेरी सहज जीविका के विषय में कृपया उपहास न करें। क्योंकि जिसका जो स्वाभाविक कर्म है उसे कभी नहीं छोड़ना चाहिये चाहे भले ही लोग उस कर्म की निन्दा करें। उक्त कथन का गीता से भी समर्थन होता है–

सहजं कर्म कौन्तेय! सदोषमति न त्यजेत्! स्मृति ने भी विधान दिया है–

देशानुशिष्ट कुलधर्मज्ञ स्वगोत्रधर्मं न हि स त्यजेत्। इस प्रकार अब आर्थिक सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय करार के अनुसार उक्त ''व्यवसाय चुनने का अधिकार'' प्रत्येक मानव को मुख्य रूप से प्राप्य है।

इस नाटक में ''मातृत्व एवं शिशुत्व कल्याण के अधिकार'' को भी देखा जा सकता है, जब शकुन्तला एवं उनके बच्चे की व्यवस्था के लिए पुरोहित (सोमरात) ने पुत्र जन्म तक अपने घर रखने का प्रस्ताव किया। ''अत्र भवती तावदा प्रसवाद्स्मदगृहे तिष्ठतु''। यद्यपि शचीतीर्थ के पास ही स्त्री के सदृश आकार वाली एक तेजोमयी मूर्त्ति शकुन्तला को उठाकर चली जाती है। उक्त प्रसंग के माध्यम से

महाकवि न गर्भयुता स्त्री को सर्वथा भटकाने के लिए नहीं छोड़ा बल्कि एक मानवोचित साथ ही विधिसम्मत व्यवस्था दर्शाकर मानवाधिकार को अक्षुण्ण रखा है।

अभिज्ञानशाकुन्तल के चौथे अंक के प्रारम्भ में ऋषि दुर्वासा के द्वारा शकुन्तला को शाप दिया गया ''अतिथि का अपमान करनेवाली! तूँ जिस तरह मुझे नहीं सुन पाई उसी तरह तुम्हें प्रिय नहीं सुन पाएगा''– इस शाप की व्यख्या में मानवाधिकार हनन' का अरोप लगाया जाता है। क्योंकि अपने प्रिय को याद करना सम्बन्धियों का अधिकार है। लेकिन ऋषि तो शाप दे बैठे। शापित अब तक अनजान ही है। ऐसी स्थिति में शापित शकुन्तला की संगिनी निवेदनपूर्वक ऋषिप्रवर से समाधान चाहती है। दुर्वासा ने समाधान दर्शाया भी कि मेरा वचन अन्यथा असत्य नहीं होना चाहिये। किन्तु पहचान के लिए कोई अलंकार दिखलाने से इस शाप की निवृत्ति हो जायेगी।

इस प्रकार यथास्थान इस नाटक में मानवीय मौलिक–अधिकारों एवं उनकी रक्षा के प्रसंग अनायास ही हैं। चूँकि यह मानवाधिकार विषय आधुनिक प्रवत्तियों से दृष्ट उत्पन्न है तथापि कुल मिलाकर हैं तो मानवीय प्रवृत्ति से संबंधित ही। अतः, किसी भी उत्कृष्ट रचना में ऐसे विषय मिल ही जाते हैं। विशेषकर अभिज्ञानशाकुन्तल जो मानवीय जीवन का ही साहित्य है, नागरिक संस्कृति का निदर्शक है, वर्णाश्रम धर्मानुयायी पौराणिक समाज का पोषक है, कौटुम्बिक जीवन के सुख का पिरवर्द्धक है, अपेक्षित मर्यादा का संकेतक है उसे तो सच्चे अर्थों में मानवाधिकार संरक्षक कहा जाना समीचीन प्रतीत होता है।

संदर्भ :–

1. मानवाधिकार और कर्त्तव्य – पृष्ठ 01 – प्रकाश नारायण नाटाणी, अविष्कार पब्लिशर्स, 2003, जयपुर।
2. मानवाधिकार और पुलिस संगठन, पृष्ठ 23, ले0– दिलीप जाखड़ प्र0सं0 2000 यूनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर।
3. मनुस्मृति 4.32
4. मनुस्मृति 4.67,68,164
5. अभिज्ञानशाकुन्तल– 1.10 बाबूराम त्रिपाठी, मेरठ प्रकाशन आगरा।
6. अभिज्ञानशाकुन्तल– पृष्ठ 88 श्लोक 1.16 से पूर्व
7. अभिज्ञानशाकुन्तल– पृष्ठ 120
8. अभिज्ञानशाकुन्तल– पृष्ठ 201

9. अभिज्ञानशाकुन्तल– पृष्ठ 320 –327

10. अभिज्ञानशाकुन्तल– पृष्ठ 126, द्वितीय अंक का प्रारम्भ

11. जस्टिस जयचंद्र रेड्डी द्वारा राष्ट्रीय सिंपयोता में सिंपेजिया में प्रस्तुत रिपोर्ट (27–28 अक्टूबर 1996)